श्री परमात्मने नमः

शिक्षाप्रद शास्त्रीय उदाहरण की समालोचना।

संग्रह कर्त्ता:—

पं० मक्खनलाल जी,

प्रकाशक:—

जैन अनाथाश्रम, देहली।

22

मक्ख

॥ श्रीः ॥

शिक्षाप्रद शास्त्रीय उदाहरण

की

समालोचना ।

संग्रह कर्त्ता

पण्डित मक्खनलाल जी ।

प्रचारक :—

जैन अनाथाश्रम, देहली ।

भाद्रपद वीरनिर्वाणाब्द २४५० ।

प्रथमावृत्ति २००० } सन् १९२४ ई० { मूल्य सदाचार

इम्पीरियल बुक डिपो प्रेस में छपा ।

भूमिका।

प्रिय सज्जन वृन्द ! आप बाबू जुगलकिशोर जी मुख्त्यार देवबन्द निवासी को जानते होंगे। आप के लिखेहुए बहुत से लेख जैनहितैषी में निकला करते थे तथा कई पुस्तकें भी आपने लिखी हैं उन में बहुत से लेख शास्त्र विरुद्ध हैं। उन को पढ़ कर बहुत से भोले भाई तो उनका भाव ही नहीं समझते और जो समझते हैं तो उत्तर लिखना नहीं जानते तथा जो उत्तर भी लिखना जानते हैं वह यह समझ कर कि, "कौन झगड़े में पड़े" चुप बैठ जाते हैं। इसी उद्देश्यं को मन में रखते हुए हम भी किसी लेख के खण्डन मण्डन में नहीं पड़े। तथा हमने स्वयं भी कोई पुस्तक आज तक नहीं लिखी क्योंकि हमें कुछ दिन हुए देहली में एक दो जैनी भाईयों ने जाति विरुद्ध अनुचित बिवाह कर लिये थे। और उनका न्याय करने के लिये यहां की पंचायत जोर दे रही थी। परन्तु लाला जौहरीमल जी जैन सराफ़ सरीखे कुछ मन चले लोगों ने इस पंचायत के कार्य्य को उचित नहीं समझा। और बाबू जुगलकिशोर जी के लिखे अनुसार

"गृहस्थ के लिये स्त्री की जरूरत होने के कारण चाहे जिस की कन्या लेलेनी चाहिये" इसी उद्देश्य को उचित समझा तथा देहली की पंचायत इन अनुचित विवाह करने वालों को कहीं दण्ड न दे डालें बल्कि उन के इस काम को वह पंचायत बिना किसी रोक टोक के मान ले और हमेशा के लिये तथा प्रत्येक व्यक्ति के लिये यह साधारण रास्ता खोल दे। यही बात पंचायत को समझाने के लिये लाला जौहरीमल जी ने बाबू जुगल किशोर जी मुख्त्यार देवबन्द (हाल सरसावा) को लिखी हुई **शिक्षाप्रद शास्त्रीय उदाहरण** नाम की पुस्तक प्रकाशित करदी। इस पुस्तक के प्रकाशित होते ही देहली की पंचायत में एक प्रकार की हल चल सी मच गई। क्या! बसुदेव ऐसे महान पुरुषों ने सचमुच भतीजी से विवाह किया था, नीच कन्या से विवाह किया, और दस्से की लड़की से भी विवाह किया था, आदि बातों पर आश्चर्य करने लगे। तथा अन्य मतानुयाई लोग हंसी उड़ाने लगे कि जैनियों के यहां भतीजी के साथ भी शादी जायज है। यह देख कर बहुत से धार्मिक जन यहां के शास्त्र प्रेमी जान कारों से बार बार पूछने लगे। उनके

इस बढ़े हुए जोश को देख कर और अत्यन्त मिथ्या शास्त्र विरुद्ध और महापुरुषों को केवल झूठा कलंक लगाने वाली उस पुस्तक को पढ़ कर हम से भी न रहा गया। हम ने लाला जौहरीमल जी से बात की तो उस में भी उन की यही मंशा पाई कि इस जाति पांति में क्या रक्खा है। अब जाति वर्ण की आवश्यकता नहीं है। ज़रूरत के अनुसार हर एक को हर एक की कन्या ले लेना व दे देना चाहिये।

लाला साहब की इस अन्याय पूर्ण धर्म बिरुद्ध और सदाचार को सदा के लिये हटा देनी वाली बातों को सुन कर हमारे हृदय ने नहीं माना। और समय पर जो कुछ बन पड़े उतने शास्त्रों का प्रमाण संग्रह कर वास्तविक बात प्रगट कर दी। और बाबू साहब ने असत्य कथायें लिख कर वसुदेव जी पर दोषारोपण किये हैं उनका निराकरण करके असली रूप दिखला दिया। यदि पाठक गण इसे आद्योपान्त पढ़ जायगे तो उन्हें मालूम हो जायगा कि बाबू साहब ने अपनी ऊपर लिखी हवस पूरी करने के लिये कितना झूठ और कितना शास्त्र बिरुद्ध लिखा है तथा किस चालाकी से काम लिया है। लाला जौहरीमल जी भी ऐसी अस्पृश्य पुस्तक को छपाकर इसके प्रचार द्वारा जैन

जाति का गौरव घटा कर धर्म कर्म भ्रष्ट करना चाहते हैं। यह बड़ी लज्जा और दुःख की बात है।

यह बात हम ऊपर लिख चुके हैं कि हमें लिखने का अभ्यास नहीं है इसलिये इस में बहुत सी त्रुटियां और भाषा की अशुद्धियां रह गई होंगी उन के लिये हम पाठकों से सनम्र क्षमा चाहते हैं। हमारे इस छोटे से प्रयास को सुन कर देहली के धर्म प्रेमी भाईयों ने अपनाया है और अपने ही द्रव्य से प्रकाशित कर इसे बटवाया है। इस के लिये हम यहां के भाईयों के बड़े आभारी हैं और उन्हें कोटि कोटि धन्यवाद देते हैं।

जैन समाज का एक सेवक :—

मक्खनलाल

प्रचारक जैन अनाथाश्रम देहली।

निवेदन ।

प्रियसज्जनवर !

आपने बाबू जुगलकिशोर जी मुख्त्यार (सरसावा) साहरनपुर की लिखी "शिक्षाप्रदशास्त्रीय उदाहरण' नाम की पुस्तक देखी होगी । पहले कुछ मनचले जैन धर्म से द्वेष रखने वाले लोग जैनधर्म के विषय में कुछ अण्ड बंड लिखा करते थे परन्तु उनका वह भी इतना सफेद झूठ नहीं होता था जितना कि कुछ समय से हमारे जैनी कहलाने वाले कुछ भाइयों ने जो कहना व लिखना प्रारंभ किया है पहले बाबू सूरजभान् वकील ने कई समीक्षाएं लिखी थी और उनका यथोचित उत्तर दिया गया था तथा भा० व० दि० जैन महासभाने उनको अपने समुदाय से पृथक कर दिया था परन्तु बाबू जुगलकिशोर जी अभी तक यह कार्य कर रहे हैं और उन्हों ने भी ऐसी जैन शास्त्र खंडन करने वाली पुस्तकें व लेख लिखे हैं उन का खंडन समाचार पत्रों में हो चुका है जो कि जैन गजट आदि समाचार पत्रों के पढ़ने वालों ने पढ़े ही होंगे।

उसी समय बाबू जुगलकिशोर जी द्वारा यह लेख लिखा गया था उसीको लाला जौहरीमल जी सर्राफ देहली ने संग्रह कर पुस्तकरूप से प्रकाशित की है ।

इस में लिखी कथायें कितनी झूठ मिथ्या और शास्त्र विरुद्ध है यह बात पाठ्यगण इस समालोचना को पढ़कर जान ही जावेंगे । साथ में उन्हें यह भी मालूम हो जायगा कि लेखक व

प्रकाशक के विचार कितगिरे हुये हैं। और वे समाज को किस चालाकी से पतित करना चाहते हैं। इससे समाज के सदाचार और धर्मोन्नति में बड़ी बाधा आती है हमे आशा है कि पाठकगण इस पुस्तक को पढ़ कर ऐसे महाशयों से और उन के लेखों से सावधान रहेंगे। और उन की ऐसी २ मिथ्या बातों से कभी धोखा न खायेंगे। इसी उद्देश्य से यह पुस्तक प्रकाशित कर बिना मूल्य वितर्ण की है आशा है कि लोग लाभ उठायंगे हम पं० मक्खनलाल जी को धन्यवाद देते हैं जिन्होंने अपना अमूल्य समय को लगाकर अनेक आर्ष शास्त्रों को देखकर यथोचित उत्तर लिख दिया है आशा है। कि आप धार्मिक कार्यों को इसी प्रकार करते रहेंगे और जात्याचार और कुलाचारों को रक्षित कराने में सहायक बनते रहेंगे।

१. पारसदास (गवर्मेंट खजान्ची)
२. महबूबसिंह (मालिक फर्म)
३. महाबीरप्रशाद (मेनेजर जैन अनाश्रम)
४. जग्गीमल (जौहरी)
५. तिलोकचन्द (सोहनलाल तिलोकचन्द)
६. पिंडी रामचन्द्र जी मजिष्ट्रेट (मंत्री जैन पंचायत देहली।

* श्रीसर्वज्ञायनमः *

शिक्षाप्रद शास्त्रीय उदाहरण

की

समालोचना ।

बंधु वर्गी बाबू जुगलकिशोर जी मुख्त्यार साहब ने अपनी पुस्तक में वसुदेवजी के बिवाह की चार घटनाओं का उल्लेख किया है। हम भी उसी क्रमानुसार समालोचना करते हुए उनका यथार्थ स्वरूप शास्त्रानुसार बताते हैं।

सब से पहले आपने "**देवकी से बिवाह**" का उदाहरण दिया है। उस में आपने किसप्रकार धोखा दिया है, और यह मन गढ़न्त कथा कितनी मिथ्या और शास्त्र बिरुद्ध लिखी है, यह बात शास्त्रों से भलीभांति सिद्ध हो जाती है। देखिये आपने लिखा है:--

देवकी से बिवाह।

देवकी राजा उग्रसेन की पुत्री नृप भोजक वृष्टि की पौत्री और महाराजा सुवीर की प्रपौत्री थी। बसुदेव राजा अन्धक वृष्टि के पुत्र और नृप शूर के पौत्र थे। यह नृप शूर और देवकी के प्रपितामह सुवीर दोनों सगे भाई थे। दोनों के पिता का नाम नरपति और प्रपितामह (बाबा) का नाम यदु था। ऐसा श्रीजिन सेनाचार्य्य ने अपने हरिवंश पुराण में सूचित किया है और इस से यह प्रकट है कि राजा उग्रसेन और बसुदेवजी दोनों आपस में चचा ताऊ जाद भाई लगते थे और इसलिये उग्रसेन की लड़की 'देवकी, रिश्ते में बसुदेव की भतीजी (भ्रातृजा) हुई। इस देवकी से बसुदेव का विवाह हुआ जिस से स्पष्ट है कि बिवाह में गोत्र तथा गोत्रकी शाखाओं का टालना तो दूर रहा एक बंश और एक कुटुम्ब का भी कुछ खयाल नहीं रक्खा गया। बसुदेवजी ने गोत्रादि सम्बन्धी इन सब बातों को कुछ भी महत्व न देकर, बिना किसी संकोचके अपनी भतीजी के साथ बिवाह कर लिया और उन का यह बिवाह उस समय कुछ भी अनुचित नहीं समझा गया। उस बिवाह से अनेक सुप्रतिष्ठित और बहुमान्य पुत्र रत्नों का उद्भव हुआ; अर्थात् देवकी ने श्री कृष्ण के अतिरिक्त छः तद्भवमोक्षगामी पुत्रों को भी जन्म दिया।

(समालोचना) इस लेख को अवलोकन कर हम को बड़ा

खेद होता है कि लेखक महोदयने कितना सफ़ेद झूठ बोला है। हम मुख्त्यार जी से पूछते हैं कि आपने जो वंशावली प्रगट की है वह किस शास्त्र के आधार पर की है? क्योंकि आपने जो हरिवंशपुराण का नाम लिया है सो उस में कहीं पर भी उग्रसेन की पुत्री देवकी, नहीं लिखा है। जिस प्रकार अन्धक वृष्टि के दस पुत्र और दो पुत्रियों के नाम लिखे हुए हैं। तथा भोजक वृष्टि के तीन पुत्र और एक पुत्री का नाम लिखा है। उसी तरह यदि उग्रसेन की (देहजा) पुत्री देवकी होती तो आचार्य्य उग्रसेन की पुत्री देवकी का वृत्तान्त अवश्य लिखते उन्हों के तो कोई थी ही नहीं वर्णन कहां से करते। शायद बाबूजी के कान में वंशावली के वर्णन करने वाला कोई आपका अर्वाचीन पुरोहित कह गया होगा। यदि वह अधिक से अधिक हरिवंशपुराण का प्रमाण देंगे तो वहांपर इतना अवश्य लिखा हुआ हैकि कंस ने अपनी बहिन देवकी गुरुदक्षिणा में वसुदेव को प्रदान की, शायद इसी लेख की नींव पर लेखक महोदय ने उपर्युक्त वंशावली की गढंत गढ़कर देवकी को वसुदेव जीकी भतीजी प्रमाणित करना चाहा है। लेकिन महाशय जी आप उसी हरिवंश-पुराण (पं० गजाधरलालजी का भाषा किया हुआ) के कुछ पृष्ट आगे पलटकर देखते तो आपको पता लगजाता जहांपर अतिमुक्तकमुनि ने कंस तथा देवकी और इसके होनहार युगालिया पुत्र तथा श्री कृष्णजी की भवावली वर्णन की है वहां पृष्ठ ३३६की

२४ वीं लाइन में स्पष्ट लिखा है कि रानी नन्दयशा इस दशार्ण नगर में देवसेन की धन्यानामक स्त्री से यह देवकी उत्पन्न हुई है। अर्थात् पूर्व जन्म में जो नन्दयशा का जीव था वह स्वर्ग में गया वहां से आकर दशार्णनगर में जो देवसेन राजा था उसकी धन्यानाम की स्त्री से यह देवकी उत्पन्न हुई। अब कहिये कि यह देवकी उग्रसेन की पुत्री किस प्रकार हो सकती है। लेकिन बाबूजी को लोगों के लिये यह दिखलाना था कि भतीजी के साथ बिवाह करने में कोई हानि नहीं है। क्योंकि जब बसुदेव जी ने जो कि जैन समाज में प्रसिद्ध व्यक्ति थे। उन्होंने ही कोई संकोच नहीं किया तो आप लोग ही क्यों गोत्रादि के भँवर में पड़ते हैं। यह नहीं बिचार किया कि इस असत्य लेख के लिखने से विधर्मीजन पवित्र जैनधर्म को कितने घृणापूर्ण दृष्टि से अवलोकन करेंगे। जैनी तो आप की बातों में आने वाले नहीं हैं। क्योंकि आप की लेखन शैली को सब जैन समाज अच्छी तरह जानते हैं।

पाठक गण ! हमारे इतने उत्तर से ही संतुष्ट लाभ न करें किन्तु इसविषय को स्पष्ट करने के लिये निम्नलिखित शास्त्रों के प्रमाणों को देखें।

(१) पांडवपुराण संस्कृत अध्याय १२ वां

अथोमृगावतीदेशे दशार्णनगरेनृपः।
देवसेनःप्रियातस्य धनदेवी धनाप्रिया॥ ५१॥

तयोःसुता शुभालापा देवकी कोकिलस्वना ।
दापिता वसुदेवाय कंसेनमहताग्रहात् ॥ ५२ ॥

इसका अर्थ पं० घनश्यामदास जी द्वारा अनुवाद किये हुए पांडवपुराण के १७२ वें पृष्ठ पर इसप्रकार लिखा है। मृगावती देश में दशार्ण नाम का एक नगर है। वहां का राजा देवसेन था और उस की रानी का नाम धनदेवी था। वह इन्द्र की इन्द्राणी जेसी थी। उसके एक पुत्री थी जिसका नाम था देवकी। उस के कोयल जैसा सुन्दर स्वर था। वह बहुत ही अच्छा आलाप लेती थी। कंस ने बड़े भारी आग्रह से देवकी बसुदेव के लिये दिलाई थी।

पांडवपुराण भाषा चौपाई बद्ध पं० बुलाकीदासजी कृत सन्धि १२ वें में लिखा है। कंस की बात।

बांधि जनक को गोपुर थापि।
राज करत मथुरा को आप॥
तब बसुदेवहि मथुरा आनि।
राख्यो प्रीति भगति चित आनि॥
अब शुभ देश मृगावति जहां।
नगर दसार्ण बसत है तहां॥
देवसेन नृप तामें बसै।
धनदेवी तिस रानी लसै॥

नाम देवकी तिन की सुता ।
पिक बैनी मृग लोचन जुता ॥
सो वसुदेवहि दीनी भलैं ॥
कंसरायने हित सों रलैं ॥

विचार शील पाठक वृन्द जरा आप विचार कीजिये कि इस पांडवपुराण का कहना ठीक है या बाबूजी की कपोल कल्पित बंशावली ठीक है? अब हम पाठकों को इस विषय के प्रस्फुरित करने के लिये श्री जिनदास कृत भाषीकृत हरिवंशपुराण के श्लोक आपके संमुख पेश करते हैं। अध्याय १२

श्लो०—पुनर्मृगावतीदेशे दशार्ण नगरेनृपः ।
देवसेनोऽस्य राज्ञी च धनदेवीति विश्रुता ॥८८॥
तयोःसनन्दयशसोः जीवः आगत्य नाकतः ।
निदानदोषात्त्वंजातः देवकीकृतसत्तपः ॥८९॥

उपर्युक्त श्लोकों का यह भावार्थ है। नन्दयशा का जीव मृगावती देश और दशार्ण नगर के देवसेन राजा की धनदेवी स्त्री से तू स्वर्ग से आकर निदान के दोष से देवकी पुत्री हुई है। यह आशय श्री जिनसेनाचार्य्य ने भी वर्णन किया है जो कि ऊपर पं० गजाधरलाल जी की टीका के पृष्ठ ३३६ से बतला चुके हैं। इसी प्रकार श्रीनेमिपुराण जी संस्कृत में जहां श्री नेमिनाथ स्वामी ने देवकी तथा इस से उत्पन्न हुए

सात पुत्रों की भवावली वर्णन की है, वहां लिखा हुआ है। अध्याय १३

श्लो०—मृगावत्याख्यविषये दशार्णपुरभूपतेः।
देवसेनस्य चोत्पन्ना धनदेव्याश्चदेवकी ॥३३॥
त्वं सनन्दयशास्त्रीत्वमुपगम्य निदानतः।
जातासि वसुदेवस्य सती प्राणप्रियोत्तमा॥३४॥

अर्थ उपर्युक्त ही है। अब हमारे पाठकगणों को शायद यह सन्देह रहे कि हरिवंशपुराण में देवकी कंस की बहन लिखी है। यह कैसे? उस संदेह को मिटाने के लिये हम नेमिपुराण अध्याय ५ के तीन श्लोक पेश करते हैं।

श्लो०—ततः स्वयंसमादाय पितुः राज्यं स कंसवाक्।
गौरवेण समानीय वसुदेवं स्वपत्तनम् ॥८६॥
तदामृगावतीदेशे भुर्भुजादेशनंपुरात्।
कंसमातुलजानीता धनदेव्यासमुद्भवा ॥८७॥
देवकी नाम तां कन्यां कांचिदन्य सुरांगना।
महोत्सवैर्ददौतस्मै सोपिसार्धतयास्थितः ॥८८॥

कंस ने अपने पिता का राज्य लेने पर वसुदेव को आदर के साथ अपने नगर में बुलाया और मृगावतीदेश में दशार्ण नगर के राजा जो कि कंस के मामा थे उनकी रानी धनदेवी से उत्पन्न हुई देवकी नाम की कन्या बड़े उत्सव से वसुदेव को दी।

पुराणों में जहां जहां यह कथा है वहां किसी न किसी जगह पर अवश्य लिखा है कि देवकी देवसेन की ही पुत्री थी उग्रसेन की पुत्री उसे कहीं नहीं बतलाया। उत्तरपुराण में भी यह कथा आई है, और उस में भी देवसेन को ही पुत्री बतलाया है। यथा—

ततः प्रच्युत्य शंखोऽभूद्बलदेवो हलायुधः।
मृगावत्याख्यविषये दशार्णपुर भूपतेः॥
देवसेनस्य चोत्पन्ना धनदेव्याश्च देवकी।

उत्तर पुराण पर्व ७१ श्लो० २९१, ९२।

छपा पृष्ठ ५२१

अर्थात् देवकी मृगावती देश में दशार्णनगर के राजा देवसेन की रानी धनदेवी की पुत्री थी। इसी बात को सूचित करने वाला एक श्लोक और है।

श्लो०—अथ स्वपुरमानीय वसुदेवमहीपतिं।
देवसेनसुतामस्मै देवकीमनुजां निजां॥

उत्तर पुराण ७० छपापृष्ठ ४८१ श्लो० ३६९

अर्थात् कंस ने राजा वसुदेव को अपने नगर में बुलाकर देवसेन की पुत्री अपनी बहिन देवकी ब्याह दी। इस में देवकी को देवसेन की पुत्री बताया है। साथ में जो बहिन लिखा है उसका खुलासा ऊपर लिख ही चुके हैं, कि वह मामा की लड़की थी। जैसा कि नेमिपुराण में लिखा है। देवकी किस

की कन्या थी और कंस उसे किस प्रकार बहिन मानता था इस विषय में आराधना कथा कोश की वशिष्ट तापस की कथा में इस प्रकार लिखा है।

श्लो०—अथेह मृत्तिकावत्यां पुर्यां देवकिभूपतेः।
भार्याया धनदेव्यास्तु देवकीं चारुकान्यकाम्॥
प्रतिपन्नस्वभगिनीं तां विवाहप्रयुक्तितः।
कंसोसौ वासुदेवाय कुरुवंशोद्भवां ददौ॥८६॥

अर्थ—मृतिकापुरी के राजा देवकी की रानी धनदेवी के एक देवकी नाम की सुन्दर कन्या थी। वह कुरुवंश में उत्पन्न हुई थी। और कंस उसे बहिन करके मानता था। उसने वह कन्या वसुदेव को ब्याह दी। आराधना कथा कोश भाषा छंदोबद्ध में इस प्रकार लिखा है।

अवनगरी मृतिकावती, देवसेन महराज।
धनदेवी ताके तिया, कुरु वंशन सिरताज॥
ताके पुत्री देवकी, उपजी सुन्दर काय।
सो वसुदेव कुमार संग, दीनी कंस सु ब्याह॥

देवचंद का छपा-पृष्ठ २६२

यह सब कोई जानता है कि वसुदेव यदुवंशी थे, और देवकी कुरुवंश की थी। परन्तु बाबू साहब ने तो उसे सगी भतीजी बना ही दी। सब शास्त्रों में देवकी को देवसेन की कन्या ही लिखा है। परन्तु बाबू साहब ने तो उसे उग्रसेन की

कन्या बना ही डाली। इस झूठ का भी कुछ ठिकाना है। अपना थोड़ा सा मतलब बनाने के लिये कितना भारी झूठ बोल जाता है और लोगों को किस प्रकार धोखा दिया जाता है। इस बात का यह ज्वलंत उदाहरण है।

इस बात को प्राकृत हरिवंशपुराण में इस प्रकार लिखा है।

कय वय दिवसहि वसुदेव सामि।
आणिउ पुज्जिउ मायंगगामि॥
पुहु देवसेण णंदणि सरुव।
देवइणामे पडिवण्ण धूव॥
गुरु दक्खिण तणे विदिण्णतहो।

कितने ही दिनों में अपने स्वामी वसुदेव को बुलाकर उनकी पूजा की और मृगावती के राजा देवसेन की सुन्दर पुत्री और मानी हुई बहिन गुरुदक्षिणा में वसुदेव को दी। इसी प्राकृत हरिवंशपुराण में आगे चल कर जहां अतिमुक्तक मुनि ने भव वर्णन किये हैं वहां भी यही बात कही है। यथा—

णंदा चइवि दसण्णवर पट्टणे॥
देवसेणधणियहि हुय णंदिणी॥

अर्थात् नंदा (नंदयशा) का जीव चयकर दशार्णनगर में देवसेन और धन्या के पुत्री हुई। आगे चलकर मुनि ने बतलाया है कि यही देवकी थी और जुगलिया पुत्र इसी के हुए थे। इस लिये जो बाबू साहब का लिखना है कि देवकी

राजा भोजकवृष्टि की पौत्री और उग्रसेन की पुत्री तथा वसुदेव की भतीजी थी, उसके साथ में वसुदेव ने शादी की, यह बात उपर्युक्त लेख से बिल्कुल मिथ्या हो जाती है। यदि बाबू जी साहब को अपनी लिखी वंशावली पर सत्यता का प्रमाण है तो शास्त्रों से प्रमाणित करें। वरना ऐसी झूठी मन गढ़न्त बातों से समाज को धोखे में न डालें।

सज्जनो ! अब तो आप को यह भी संदेह न रहा होगा कि देवकी को कंस की बहिन क्यों लिखा है। देवकी कंस के मामा की बेटी थी आज कल मामा की बेटी को भी बहिन मानते हैं। शायद इस पर बाबू साहब यह कह सकते हैं पहिले मामा की बेटी बहिन नहीं मानी जाती थी क्योंकि लोग मामा की बेटी के साथ विवाह करते थे और दक्षिण देश में अब भी करते हैं परन्तु इस संदेह को आराधना कथा कोशके श्लोक अच्छी तरह दूर करदेते हैं साथ में बाबू साहब के पास गांव देवबंद में जो अराधना कथा कोश छपा है उस से भी यह संदेह साफ़ तौर से काफूर हो जाता है क्या बाबू साहब ने अपने यहां से प्रकाशित हुए ग्रंथों का भी स्वाध्याय न किया होगा ? किया अवश्य होगा परन्तु उन्हें तो जिस तिस तरह अपना मतलब बनाना है और काम वासना की हवस मिटाने के लिये यदि बाहर से कोई कन्या न मिले तो अपनी ही बहिन भतीजी आदि के साथ विवाह कर लेने की आज्ञा दे देना है।

२–जरा से विवाह।

आपने लिखा है—जरा किसी मलेच्छ राजा की कन्या थी जिसने गङ्गा तट पर वसुदेवजी को परिभ्रमण करते हुए देख कर उनके साथ अपनी कन्या का पाणिग्रहण करदिया था। पं० दौलतरामजी ने अपने हरिवंशपुराण में इस राजा को मलेक्षखण्ड का बतलाया है। और पं० गजाधरलालजी उसे भीलों का राजा सूचित करते हैं। वह राजा मलेच्छ खण्ड का राजा हो या आर्य्यखण्डोद्भव मलेच्छ राजा और चाहे उसे भीलों का राजा कहिये। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि वह आर्य्य तथा उच्चजाति का मनुष्य नहीं था और इस लिए उसे अनार्य्य तथा मलेक्ष कहना कुछ भी अनुचित न होगा।

(समालोचना) खूब क्या मलेक्षों का राजा भी मलेच्छ ही होगा? और भीलों का राजा भी भील ही हो, इसका क्या प्रमाण? यदि कोई हिन्दुस्तान का राजा हो तो हिन्दू ही हो सकता है? क्या और जरमन का जरमनी तथा मुसलमानों का मुसलमान ही हो सकता है क्या। यदि ऐसा ही नियम होता तो चक्रवर्ती जो कि मलेक्षखण्ड के भी राजा होते हैं लेखक महोदय के विचारानुसार वे भी मलेक्ष कहे जाने चाहिये। इस नियमानुसार पूज्यतीर्थंकर श्रीशान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरहनाथ जो कि चक्रवर्ती थे, लेखक महोदय के सम्मति अनुसार वे भी

इसी कोटि में आसकेंगे ? अतः इसका कोई नियम नहीं है कि किसी जाति या देश का राजा भी उसी जाति का हो अतः इस लेख से यह सिद्ध होता है कि जरा कन्या भील जाति की नहीं थी। इस में कुछ थोड़ी सी भी समझ रखने वाला मनुष्य होगा वह भी इस बात को जरूर विचारेगा कि भील लोग जङ्गलों में रहनेवाले जिनके विषय में शास्त्रों में लिखा है कि वे बड़े काले, बदसूरत डरावने होते हैं। तो बसुदेवजी ऐसे पराक्रमी और सुन्दर कामदेव के समान जिनके रूप के सामने देवाङ्गनायें भी लज्जित होजावें, ऐसी राजाओं की अनेक रूपवती और गुणवती कन्याओं के साथ विवाह किया। उनको क्या जरूरत थी कि ऐसे बदसूरत भील की लड़की के साथ शादी करले। हां यह ज़रूर हो सकता है कि भील किसी राजा की लड़की को छीन लाये हों और उसे सुन्दर खूबसूरत समझकर बसुदेव को देदी हो। इससे सिद्ध है कि वह भील की कन्या तो थी नहीं यदि थोड़ी देर के लिये यह मान लिया जाये कि किसी मलेक्ष की ही कन्या होगी तो मलेक्ष भी कितने ही प्रकार के शास्त्रों में कहे हैं। जिनमें एक क्षेत्र मलेक्ष भी हैं जो कि देश अपेक्षा मलेक्ष कहाते हैं। लेकिन कुलाचार बुराही होता है ऐसा नियम नहीं। जैसे पञ्जाब में रहनेवाले हरएक क़ौम के पञ्जाबी कहाते हैं, और बङ्गाल में रहने वालों को बंगाली तथा मदरास में रहने वालों को मदरासी कहते हैं किन्तु उन

सब का आचरण एकसा नहीं होता। इन देशों में सब ही ऊंच नीच जातियों के मनुष्य रहते हैं फिर यह कहना कि अमुक मनुष्य एक मदरासी या पञ्जाबी लड़की के साथ शादी कर लाया, यदि उसी की जाति की ऊंच खानदान की लड़की हो तो क्या हर्ज है। इस लिये बाबू साहब जो लिखते हैं कि वह कन्या नीच थी यह बात सिद्ध नहीं हो सकती नीच हम जब ही मान सकते हैं जब कि उस कन्या के जीवनचरित में कुछ नीचता दिखलाई हो। आगे आप लिखते हैं कि मलेक्षों का आचरण हिंसा में रति, मांस भक्षण में प्रीति, और जबरदस्ती दूसरों की धन सम्पत्ति का हरना इत्यादिक होता है। प्रमाण में आदिपुराण का एक श्लोक भी दिया है। परन्तु बाबू साहब ने आगे पीछे के दो चार श्लोक लिखकर यह दिखलाने की कृपा नहीं की कि यह श्लोक कैसे मलेक्षों के लिये दिया गया है अच्छा अब पाठकों को जानने के लिए आगे पीछे के श्लोक लिखकर हम बतला देते हैं कि उच्चवर्ण और उत्तम जाति वालों को भी कारण वश मलेक्ष कह देना पड़ता है यथा—

तान् प्राहुरक्षरम्लेच्छाः येमी वेदोपजीविनः।
अधर्माक्षरसंपाठैः लोकव्यामोहकारिणः ?८२॥
यतोक्षरकृतं गर्वमविद्यावलतस्तके।
वहन्त्यतोक्षरम्लेच्छा पापसूत्रोपजीविनः॥ ८३॥

(म्लेच्छाचारो हि हिंसायां रतिर्मांसाशनेपि च।
बलात्परास्वहरणं निर्धूतत्वमिति स्मृतम् ॥ ८४ ॥)
सोस्त्यमीषां च यद्वेदशास्त्रार्थमधमाद्विजाः।
तादृशं बहु मन्यन्ते जातिवादापलेपतः ॥ ८५ ॥

अर्थात्–जो वेद पढ़कर अपनी जीविका किया करते हैं और अधर्म करने वाले अक्षरों का पाठ कर के लोगों को ठगा करते हैं उन्हें अक्षर म्लेच्छ करते हैं। क्योंकि वे नीच अपने अज्ञान के बल से अक्षरों से (वेद के पढ़ने से) उत्पन्न हुए अभिमान को धारण करते हैं इसलिये पाप सूत्रों से जीविका करने वाले वे अक्षर म्लेच्छ कहलाते हैं। हिंसा से प्रेम मानना, मांस खाने में प्रेम मानना, जबरदस्ती दूसरे का धन हरण करना यही म्लेच्छों का आचार व आचरण समझना चाहिये। यह सब आचरण इन में हैं और अपने ब्राह्मण जाति के अभिमान से ये नीच ब्राह्मग हिंसा करना मांस खाना आदि को पुष्ट करने वाले वेदशास्त्र के अर्थ को बहुत कुछ मानते हैं।

इस से सिद्ध है कि उच्चवर्ण और उत्तम जाति के ब्राह्मण भी केवल गाढ मिथ्यात्वी होने से म्लेच्छ कहे गये हैं और वह श्लोक जो आपने दिया है वह इसी प्रकरण का है। बहुत कुछ संभव है कि जरा किसी ऐसे ही गाढ मिथ्यात्वी राजा की कन्या हो और उसे म्लेच्छों के राजा की कन्या लिख दिया हो। दूसरी बात यह है कि जब बाबूसाहब ने आदि पुराग में से

यह श्लोक निकाला होगा तब क्या इस के आगे पीछे के श्लोक न पढ़े होंगे ? अवश्य पढ़े होंगे परन्तु आपने आगे पीछे का संबंध छोड़ कर केवल अपने मतलब का श्लोक ले लिया है और यह आगे पीछे के श्लोकों के द्वारा प्रगट होने वाली यह सच्ची बात बिल्कुल छिपादी है कि कारण वश उच्चवर्ण व उत्तम जाति के मनुष्य भी म्लेच्छ कहे जा सकते हैं। क्या यह जनता में भ्रम फैलाना नहीं है। परन्तु किया क्या जाय बाबूसाहब की आदत भी तो पुरानी है।

आगे आप लिखते हैं कि अच्छे अच्छे प्रतिष्ठत, उच्च कुलीन और उत्तमोत्तम पुरुषों ने मलेक्ष राजाओं की कन्या से बिवाह किया जिन के उदाहरणों से जैन साहित्य परिपूर्ण है।

ठीक है हम भी इस बात को मानते हैं कि चक्रवर्ती म्लेच्छ खंड के राजाओं की कन्याओं से विवाह कर लाते थे लेकिन वे क्षेत्र की अपेक्षा से म्लेच्छ राजा कहाते थे। यह बात नहीं है कि उनके आचरण भी नीच हों या वे मांस खोर व शराबखोर हों अथवा आपके लिखे अनुसार हिंसा में रति मांस भक्षण में प्रीति रखने वाले और जबरदस्ती दूसरों का धन हरण करनेवाले हों। बाबूसाहब आपकी लिखी हुई यह बातें उन म्लेच्छ राजाओं में कभी नहीं थी। आपने जो म्लेच्छों के आचरण सम्बन्धी श्लोक दिया है वह केवल जनता में भ्रम फैलाने के लिये ऊपर नीचे का सम्बन्ध छोड़ कर दिया है यह

बात हम ऊपर दिखला चुके हैं। परन्तु जिन म्लेच्छ राजाओं की कन्याओं से भरत चक्रवर्ती जैसे उत्तम और महापुरुषों ने पाणिग्रहण किया वे मलेक्ष राजा कैसे थे यह बात आदिपुराण से भली भांति सिद्ध होती है। देखिये—

इत्युपायैरुपायज्ञः साधयन् म्लेच्छभूभुजः।
तेभ्यः कन्यादिरत्नानि प्रभोर्भोग्यान्युपाहरत् १४१
धर्मकर्म बहिर्भूताः इत्यमी म्लेच्छका मताः।
अन्यथान्यैःसमाचारैरार्यावर्तेन ते समाः॥ १४२॥

अर्थ–इस प्रकार अनेक उपायों को जानने वाले उस सेनापतिने अनेक उपायों से मलेक्ष राजाओं को बश में किया और स्वामी के उपभोग करने योग्य ऐसे कन्या आदि अनेक रत्न उनसे लिये। ये लोग धर्म क्रिया से रहित हैं व्रत आदि धर्म क्रियाएं नहीं करते इसलिये ही मलेक्ष कहलाते हैं। धर्म क्रियाओं के सिवाय विवाह आदि उनके सब आचरण आर्य क्षेत्रमें उत्पन्न होने वाले लोगों के समान हैं।

इससे सिद्ध है कि मलेक्षों के आचरण व्रत पालन आदि के सिवाय सब आर्य लोगों के समान ही होते हैं। आर्यक्षेत्र में भी ऐसे बहुत से लोग हैं जिन के विवाह आदि सब आचरण अन्य लोगों के समान होते हैं परन्तु वे दर्शन पूजन व्रत उपवास आदि कोई भी धार्मिक क्रिया नहीं करते। इससे यह सिद्ध होता है कि उन मलेक्षों में हिंसा मांस भक्षण आदि की

प्रवृत्ति सर्वथा नहीं थी। यदि उन में हिंसा मांस भक्षण आदि की प्रवृत्ति होती तो आचार्य इस प्रकरण में अवश्य लिखते परन्तु आचार्य ने तो इतना ही लिखा है कि इन में केवल धार्मिक क्रियाएं नहीं होती बाकी के सब आचरण आर्यखंड के समान होते हैं। इस से यह भी सिद्ध होजाता है कि बहुत से लोग जो म्लेच्छों को नीच और कदाचरणी समझ रहे हैं उनकी वह समझ बिल्कुल मिथ्या है। यदि वे नीच होते तो "(उनके अन्य सब आचरण आर्यखण्ड के समान होते हैं)" ऐसा आचार्य कभी नहीं लिखते। इसलिये इन मलेक्ष राजाओं को नीच हिंसक मांस खोर आदि कहना सर्वथा मिथ्या और शास्त्र विरुद्ध है। यह कभी संभव नहीं हो सकता कि जो भरत गृहस्थावस्था में अपने परिणाम ऐसे निर्मल रखते थे कि जिन्हें दीक्षा लेते ही केवल ज्ञान उत्पन्न होगया और जिन के लिये "भरत घर में ही वैरागी" आदि अनेक प्रकार की स्तुतिएं प्रसिद्ध हैं वे भरत नीच कन्याओं से विवाह करें। ऐसे महापुरुषों के लिये नीच कन्याओं के साथ विवाह की बात कहना केवल उनका अपमान करना है उन्हें कलंक लगाना है।

यहां पर हम इतना लिख देना भी आवश्यक समझते हैं कि पूर्व काल में जो विजातियों में राजाओं के विवाह होते थे वह रानियां भोग पत्नी रूप में होती थीं, धर्म पत्नी नहीं होती थी और उनकी सन्तान भी राज्य की अधिकारिणी नहीं होती थी। दाय भाग से भी यह बात सिद्ध होती है।

आगे आप लिखते हैं "इस विवाह से वसुदेव के जरत्कुमार नाम का एक पुत्र उत्पन्न हुआ जो बड़ा प्रतापी, नीतिवान, और प्रजा प्रिय राजा होगया है"। यहां पर हमें इतना ही लिखना है कि जरत्कुमार का कोई विशेषरूप जीवनचरित्र नहीं है न उसकी कहीं प्रशंसा है। हां इतना अवश्य है कि जब सब यादववंशी जल कर भस्म होगये सिर्फ कृष्ण बलदेव बचे थे जब कृष्ण भी इस जरत्कुमार के द्वारा प्राणांत होगये और बलभद्र दीक्षा लेगये तब पांडवों ने द्वारिका की फिर रचना करके जरत्कुमार को राज्य देकर कई राजाओं की कन्याओं के साथ शादी करवादी थी उस समय इसने प्रजा को बहुत खुश रक्खा था बस इतनी ही इस की प्रशंसा है।

इस कथा से यह भी सिद्ध होता है कि जरत्कुमार वास्तव में राज्य का अधिकारी नहीं था परन्तु कृष्ण के वंश में किसी के न रहने पर उसे पांडवोंने राजा बनाया था। जैसा कि हम ऊपर सिद्ध कर चुके हैं।

अभिप्राय यह है कि म्लेच्छ नीच और कदाचरणी नहीं होते जैसा कि बाबूसाहब ने लिखा है न जरा ही नीच थी और इसी लिये उससे उत्पन्न हुआ जरत्कुमार भी नीच जाति का नहीं था। यह तो केवल बाबूसाहब की हृदय वासना है कि वे शास्त्रों के विरुद्ध लोगों में भ्रम डाल कर और महापुरुषों को कलंकित कर अपना अभीष्ट सिद्ध करना चाहते हैं।

३—प्रियङ्गसुन्दरी से विवाह।

मुख्त्यार साहब ने इस विवाह के सम्बन्ध में ऐसा लिखा है

"प्रियङ्ग सुन्दरी के पिता का नाम ऐंणीपुत्र था। यह ऐंणीपुत्र ऋषिदत्ता नाम की अविवाहिता तापस कन्यासे व्यभिचार द्वारा उत्पन्न हुआ था। प्रसव-समय उक्त ऋषिदत्ता का देहान्त होगया और वह मरकर देवी हुई। जिसने ऐंणी अर्थात् हरिणी का रूप धारणकर जङ्गल में अपने नवजात शिशु को स्तन्यपान आदि से पाला। और पाल पोशकर अन्त को शीलायुध राजा के सुपुर्द कर दिया। इस प्रियङ्गसुन्दरी का पिता ऐंणीपुत्र "व्यभिचारजात" था। जिसको आज कल की भाषा में "दस्सा या गाटा भी कहना चाहिये। बसुदेवजी ने विवाह के समय यह सब हाल जानकर भी इस विवाह को किसी प्रकार से दूषित, अनुचित, अशास्त्र सम्मत नहीं समझा। और इस लिए उन्होंने प्रियङ्गसुन्दरी का पाणिग्रहण किया।"

(समीक्षा) बाबूजी ने इससे ऐसा दर्शाया है कि किसी तापसी कन्या से व्यभिचार द्वारा एक पुत्र उत्पन्न हुआ, और उसे शीलायुध राजा ने रख लिया। जैसा कि आज कल कोई विधवा स्त्री किसी पुत्र को जनकर कहीं डाल आती है। और उसे उठाकर कोई रख ले। ठीक यदि ऐसाही होता तो

हम उस पुत्र को व्यभिचार जात दस्सा अवश्य मानते। लेकिन बाबूजी ने अपनी पक्ष सिद्धि (दस्सों के साथ विवाह सम्बन्ध करना) के लिये इस कथा के शास्त्रीय वर्णन को उलट पुलटकर तथा छिपा कर जनता में भारी भ्रम फैलाने की अक्षम्य चेष्टा की है। अब हम विचारशील पाठकों के समक्ष कथा का पूर्णांश श्रीहरिवंशपुराण के अधार पर देते हैं। एक चन्दन बन नगर का राजा अमोघ दर्शन था। वह धर्म के तत्वों से शून्य था। उसने एक समय यज्ञ कराया जिसमें बहुत से तापसी भी आये थे। वहां एक कामपताका वेश्या थी । उस कामपताका पर आशक्त होकर कौशिक नाम के एक तापसी ने उसके लिये याचना की। राजा ने उसे देने से इन्कार कर दिया, इस पर तापसी ने अत्यन्त क्रोधित होकर राजा से कहा कि राजन्! तूने मेरी याचना भङ्ग की है। इस कारण मैं तुझे सर्प होकर काटूंगा यह सुनकर राजा भयभीत हुआ। और अपने पुत्र को राज्य देकर कुछ महीनों की गर्भवती स्त्री को संग लेकर तापसी होगया और बन में आश्रम में रहने लगा। नव मास पूर्ण होनेपर उस रानी के एक ऋषिदत्ता नाम की कन्या हुई । यह ऋषिदत्ता कुछ बड़ी हुई तब चारण ऋद्धि धारी मुनि से पञ्चाणुव्रत धारण किये। जब यह तरुण होगई उस समय श्रावस्ती नगरी का राजा शान्तायुध का पुत्र शीलायुध उस बन में आया जहां कि इस तापसी का आश्रम था कन्या

ने इस राजा को कुछ भोजन पान कराया। चूंकि राजपुत्र भी तरुण तथा रूपवान था और कन्या भी सुन्दरी व लावण्यवती थी इनका आपस में एक दूसरे पर विश्वास होगया। (पति पत्नी बनने की वार्ता होगई) जोकि गान्धर्व विवाह से भली-भांति घटित होता है। और इन्होंने परस्पर में काम क्रीड़ा की जब राजा चलने को हुआ तब उस समय ऋषिदत्ता ने राज-पुत्र से निवेदन किया कि हे नाथ! मैं ऋतुमती हूं। यदि इस समय मेरे गर्भ रहजाय तो मैं क्या करूं। राजा ने अपना पूर्ण पता बताकर कहा हे प्रिये! जब तेरे पुत्र उत्पन्न हो तो तुम मेरे पास उसे लेकर निर्भय चली आना, तुम्हें कोई कष्ट न उठाना पड़ेगा। यह कहकर राजपुत्र अपने गृह को चला गया। और ऋषिदत्ता ने अपने माता पिता से लज्जा को छोड़कर सर्व वृत्तान्त कह दिया कि मैं एकान्त में राजा शीलायुध की पत्नी होचुकी हूं। गर्भमास व्यतीत होने पर ऋषिदत्ता के पुत्र उत्पन्न हुआ जो कि राजा शीलायुध की तुलना प्रताप सुन्दरता में करता था। पुत्र प्रसव-समय ऋषिदत्ता के अति वेदना हुई और मरकर सम्यक्त्व के प्रभाव से ज्वलन प्रभवल्लभा नाम की नागकुमारी हुई। अवधिज्ञान से पूर्वभव को स्मरण कर हिरण का रूप धारण कर वन में दुग्ध-पान कराकर बच्चे का पालन पोषण किया। कुछ दिनों में उस देवी ने वह लड़का (जोकि राजा शीलायुध द्वारा ही उत्पन्न हुआ था) राजा

शीलायुध के पास लेजाकर कहा, राजन् राज लक्षणों से मंडित आप की मृत स्त्री से छोड़ा गया आप का पुत्र है आप इसे ग्रहण करें। ऐसा कह कर अपना सब वृत्तान्त बताया और राजपुत्र को देदिया। इस लड़के का नाम ही एंणीपुत्र था। इसी एंणीपुत्र से प्रियंग सुन्दरी नाम की कन्या उत्पन्न हुई।

पाठक महोदय, अब इन दोनों कथाओं को पढ़ कर विचारें कि बाबूजी ने प्रियंगसुन्दरी को दस्से की कन्या सिद्ध करने तथा एंणीपुत्र को व्यभिचार जात बताने के लिये कितनी असत्य पूर्ण तथा व्यर्थ चेष्टा की है। और जो खास खास बातें उल्लेख योग्य थीं वह बिल्कुल उड़ा दी हैं। जैसे—

(१) राजा अमोघ दर्शन का कुछ भी हाल न देकर ऋषि-दत्ता को सिर्फ तापसकन्या ही लिख दिया। इस से पाठक समझें कि किसी तापसी (फक़ीर) की कन्या थी जोकि अज्ञात कुल शील समझी जाय।

(२) ऋषिदत्ता ने चारण ऋद्धिधारी मुनि से पंचाणुव्रत लिये जिस से कि ऋषिदत्ता शीलवती सिद्ध होती है उस का ज़िकर तक भी नहीं किया। यदि बाबू जी इसे पंचाणुव्रत धा-रिणी लिख देते तो शायद उनकी "व्यभिचार सिद्ध में बाधा पड़ती।

(३) आपने लिखा है कि ऋषिदत्ता प्रसव वेदना से मर कर देवी हुई। किन्तु यह नहीं लिखा कि सम्यक्त्व सहित मरण

कर नागकुमारी देवी हुई। यदि बाबूजी ऋषिदत्ता के पंचाणुव्रत और सम्यक्त्व सहित मरण पर विचार करते तो ज्ञान हो आता कि यह कन्या सम्यक्त्व सहित पंचाणुव्रत धारिणी थी। और गांधर्व बिवाह से पहिले ही उसने अणुव्रत धारण कर लिये थे इस लिये यह बिना किसी को पति बनाये कभी काम सेवन नहीं कर सकती थी।

(४) आपने लिखा है कि अन्त में शीलायुध राजा के सुपुर्द कर दिया किन्तु यही नहीं लिखा कि उस देवी ने उस पुत्र को लेजाकर राजा से यह कहा। "राजन्" राजलक्षणों से मंडित आपकी मृत स्त्री से छोड़ा गया एँणीपुत्र नाम का धारक आप का यह पुत्र है आप इसे ग्रहण करो। लेकिन लिखते क्यों ऐसा लिखने से तो सब भेद ही खुल जाता। क्योंकि जब अपनी स्त्री से उत्पन्न हुआ है फिर व्यभिचार जात कैसा? यदि पर स्त्री से पैदा होता तो व्यभिचार जात कहना ठीक था।

हम अपने पाठकों को यह बता देना चाहते हैं कि माता पिता और बंधुओं की गैर मौजूदगी में जो कन्या और वर अनुराग पूर्वक परस्पर में अपना सम्बंध जोड़लें वह गांधर्व बिवाह है।

"गांधर्व बिवाहो यो मातुः पितुर्बन्धूनां चा

प्रामाण्यात्परस्परानुरागेण मिथः समवायाद्वधूवराभ्यां क्रियते सः गान्धर्व विवाहः" ।

इस गांधर्व के होने पर जो सन्तान उत्पन्न होती है वह व्यभिचार जात नहीं कही जा सकती । इसी प्रकार उपर्युक्त राजा शीलायुध और ऋषिदत्ता का गांधर्व विवाह अवश्य हुआ क्योंकि इस में उपर्युक्त लक्षण घटित होता है । इसलिये जिन सेनाचार्य्य कृत हरिवंशपुराण में, जब ऋषिदत्ता के पास से शीलायुध जाने लगे तो ऋषिदत्ता ने कहा ।

" ऋतुमात्यार्यपुत्राहं यदिस्यां गर्भधारिणी । "

हे आर्य्यपुत्र मैं ऋतुमती हूं मेरे गर्भ अवश्य होगा इस पाद में आर्य्य पुत्र जो विशेषण है, यह पति के लिये ही होता है । इसी प्रकार शीलायुध ने अपना पता बताते हुए ऋषिदत्ता से कहा है ।

" पृष्टस्तथासतामाह या कुलाभूः प्रिये शृणु । "

अध्याय २९ ।

इस में जो प्रिये विशेषण है यह पत्नी के ही लिये होता है । जिनदास ब्रह्मचारी ने भी लिखा है !

" इति पृष्टः सतामूचे मा भैषी शृणु वल्लभे । "

इस में " वल्लभे " जो विशेषण है [illegible] के लिये ही होता है ।

जब ऋषिदत्ता ने शीलायुध को पति और शीलायुध ने पत्नी निश्चय करके भोग किया फिर इस ऐणीपुत्र को बाबू जी व्यभिचार जात किस आधार पर कहते हैं। ऋषिदत्ता के राज कन्या थी जो कि पंचाणुव्रत धारिणी सम्यकदृष्टि थी और राजा शीलायुध इक्ष्वाकुबंश में उत्पन्न बड़ा प्रतापी राजा था। उक्त दम्पति से "एणीपुत्र" उत्पन्न हुआ था जो कि शुद्ध जाति और कुलोद्भव था। इसी एणी पुत्रकी प्रियंगसुन्दरी पुत्री थी जिस के साथ बसुदेव जी ने शादी की।

यह बात प्राकृत हरिवंश पुराण में इस प्रकार लिखी है।

रिसिदत्ता णंदिणी तिणि जाइया।
सा चारण समीवे णिसुणेप्पिणु॥
सावयधम्मु गहिउ मणुदेप्पिणु।
सीलाउह णरवइ तहि पत्तउ॥
वणकीलइ सो ताए विदिट्ठउ।
अति हिं घरि विहुय तहो अणुराइया॥
तेंसि हि सक्खि केरवि विवाहिया।

देहली पंचायती मंदिर का लिखा हुआ प्राचीन पत्र १७

भावार्थ- उस के ऋषिदत्ता पुत्री हुई उसने चारण मुनि से धर्म का स्वरूप सुना और श्रावक धर्म स्वीकार किया। फिर किसी समय शीलायुध राजा वहां वनक्रीडा के लिये

आया वह ऋषिदत्ताने देखा उन दोनों में परस्पर अनुराग हो गया और उन्होंने तंसि को साक्षी कर विवाह कर लिया।

इस में और कथा तो सब ऊपर के ही अनुसार है परन्तु अंतिम पंक्तिमें "तंसि को साक्षीकर विवाह कर लिया" यह बात अधिक है तंसि का अर्थ हमें मिला नहीं परन्तु इस में संदेह नहीं कि किसी न किसी अचेतन पदार्थ को साक्षी कर उन्होंने एकांत में विवाह किया है। इस में संदेह नहीं।

आगे मुख्त्यार साहिब लिखते हैं कि वसुदेव जी ने विवाह के समय यह सब हाल जानकर भी इस विवाह को किसी प्रकार से दूषित, अनुचित, अथवा अशास्त्र सम्मत नहीं समझा।

ठीक है। दूषित, अनुचित, तथा अशास्त्र सम्मत समझते ही क्यों उस कन्या में कोई अशुद्धताई ही नहीं थी। अशुद्धता तो आपने मन गढ़न्त अपना मतलब सिद्ध करनेके लिये कल्पना की है।

फिर आप लिखते हैं कि वसुदेव की बड़ी प्रतिष्ठा हुई और किसी ने कलंक नहीं लगाया। बाबू जी ! उन्होंने तो कोई कलंक लगने का काम ही नहीं किया था जिस से कि कोई कलंक लगाता लेकिन आपने तो निष्कलंकों को भी कलंक लगा दिया जो कि उन्हें लिख दिया कि वसुदेव जी ने भतीजी के साथ विना रोक टोक के शादी करली, दूसरे की लड़की के साथ शादी करली। ऐसे महान् पुरुषों के लिये इस से अधिक

आगे आप लिखते हैं कि जिन सेनाचार्य्य ने हरिवंशपुराण में बसुदेव जी की कीर्ति अनेक प्रकार से कीर्त्तन की है । ऐसा हम भी स्वीकार करते हैं कि बसुदेव जी बड़े प्रशंसनीय पुरुष थे । लेकिन आपने तो अपनी मनो कामना सिद्ध करने के लिये (जाति पांति मेटकर हर एक नीच ऊंच के साथ परस्पर में शादी तथा गोत्रादि के मेटने) उनको अप्रशंसनीय बना दिया। आप की किताब को देखकर हरेक धर्म प्रेमी मनुष्य का चित्त क्लेशित होता है । आप चाहें जाति में कैसे ही प्रवृत्ती फैलावें किन्तु शास्त्रों का नाम लेकर पुराण पुरुषों को दूषण न लगाया करें ।

४—रोहिणी का स्वयम्बर ।

आपने लिखा है "रोहिणी अरिष्टपुर के राजा की लड़की और एक सुप्रतिष्ठित घराने की कन्या थी । इसके बिवाह का स्वयम्बर रचाया गया था, जरासन्धादिक बड़े २ प्रतापी राजा दूर देशान्तरों से एकत्र हुए थे। स्वयम्बर मण्डप में वसुदेव जी किसी कारण विशेष से अपना वेष बदल कर, "पणव" नाम का वादित्र हाथ में लिये हुए एक ऐसे रंक तथा अकुलीन बाजन्त्री (बाजा बजाने वाला) के रूप में उपस्थित थे कि जिससे किसी को उस वक्त वहां उनके वास्त-

यिक कुल जाति आदि का कुछ भी पता मालूम नहीं था। रोहिणी ने सम्पूर्ण उपस्थित राजाओं तथा राजकुमारों को प्रत्यक्ष देखकर और उनके वंश तथा गुणादि का परिचय पाकर भी जब उनमें से किसी को भी अपने योग्य वर को पसन्द नहीं किया तब उसने सब लोगों को आश्चर्य्य में डालते हुए, बड़े ही निःसङ्कोच भाव से उक्त बाजन्त्री रूप के धारक एक अपरिचित और अज्ञात कुलजाति नामा व्यक्ति (वसुदेव) के गले में ही अपनी वर माला डाल दी।"

समीक्षाः--बाबू जी ने अपना प्रयोजन साधने के लिये इस कथा में भी बहुत कुछ उलट फेर किया है। हम बाबू जी से पूछते हैं कि आपने जो लिखा है कि "एक ऐसे रंक तथा अकुलीन" बाजन्त्री के रूप में उपस्थित थे। नहीं मालूम कि "रङ्क और अकुलीन" शब्द कहां से निकाल लिए। क्या बाजे बजाने वाले रङ्क या अकुलीन ही होते हैं? बडे २ राजे और महाराजे तक भी बाजा बजाया करते हैं। जो लोग हारमोनियम तथा सितार बजाया करते हैं तो क्या वे रङ्क तथा अकुलीन ही समझे जाते हैं? नहीं मालूम अपनी तरफ से क्यों ऐसे २ शब्द जोड़े जाया करते हैं।

भाषा हरिवंशपुराण पं० गजाधरलाल जी द्वारा अनु-

वादित पृष्ठ ३१२ में रोहिणी के स्वयम्वर की वार्ता में लिखा है कि—

"राजा लोगों के बैठने के लिये सर्वथा योग्य चित्र विचित्र मणियों के जड़े हुए उत्तमोत्तम स्तम्भों से शोभित तख्तों पर अपनी २ योग्यतानुसार आ विराजे, कुमार वसुदेव भी सभा में गये और जहां पर वीणा बजाने वाले बैठे थे। हाथ में वीणा ले बैठ गये कुमार जिस वेष में बैठे थे उससे उनके भाई आदि उन्हें न पहिचान सकते थे।"

संस्कृत में भी जिनसेनाचार्य्य ने अध्याय ३१ में लिखा है:—

तत्र चित्र मणिस्थंभ धारितेषु यथा क्रमम्।
ते मञ्चेसु समीपाना नृपाभूषित विग्रहाः॥ १३॥
बसुदेवो पि तत्रैव भात्रलाक्षित वेषभृत्।
तस्थौ पणविकां तस्थो ग्रहीत पणवोगृणी॥ १४॥

जिनदास ब्रह्मचारी कृत हरिवंशपुराण अध्याय ११।

तत्र नाना मणिस्थंभधृतमत्रेषु भूमिपाः।
भूषितांगा समासीना यशः संघा इवोऽर्जिताः ३६
भाव लक्षित वेषोऽपि तत्रैव यदुनन्दनः।
गृहीत पणवस्तस्थौ मध्ये सर्वकलाविदां॥ ३७॥

पं० गजाधरलाल जी की भाषा से तथा उक्त श्लोकों से

कहीं भी यह नहीं निकलता कि बसुदेव जी "रङ्क तथा अकुलीन" वेष में थे।

यह अवश्य है कि वे अपना भेष बदले हुए थे जिस से कि उनके भाई उन्हें पहिचान न सकें, क्योंकि बसुदेव जी घर से नाराज़ होकर चले गये थे। प्रायः महान् पुरुष किसी कारण वस घर से चले जाते हैं तो वे कुछ न कुछ पराक्रम तथा ऐश्वर्य्य दिखलाये बिना नहीं मिलते इसी भाव को मद्दे नज़र रखते हुए वसुदेवजी भी अपने भेष को छुपाये हुए थे। किन्तु इस वेष के छिपाने से उन पर कंगाल या अकुलीनपना लागू नहीं होता।

दूसरे-स्वयंबर मंडप में सब राजा ही लोग आया करते थे और जो इस योग्य हुआ करते थे उन्हीं को स्वयंबर मंडप में प्रवेश किया जाता था।

क्या आपने स्वयंवर मंडप को बाजीगर का तमाशा समझ रक्खा है जिस में कि प्रत्येक तेली, तमोली, धुना, जुलाहे घुस जांय। बाबूजी वह तो राजाओं की सभा थी जिस में कि जरासिंधु जैसे त्रिखंडी महाराज बैठे हुए थे। तथा बहुत से मण्डलेश्वर, महामण्डलेश्वर भी थे जिन की तेज पूर्णमूर्त्ति के सामने हर एक आदमी उन की सेना की तरफ भी फटकता नहीं था और फिर रङ्क भेष धारी पुरुषों की वहां पहुंच कैसे होसकती है। अतः सिद्ध होता है कि बसुदेव जी कामदेव थे

उनके मुखारविंद पर राजत्व झलकता था, इसलिये उन्होंने स्वयंवर मंडप में प्रवेश किया और जहां ऐसे राजा बैठे हुए थे जोकि वादित्र विद्याविशारद थे उन्हों में जाकर बैठगए। रोहिणी ने जिससमय स्वयंवर मण्डप में किसी राजाको नहीं वरा और धाय से बात चीत कर रही थी उस समय मनोहरवीणा का शब्द सुनाई पड़ा जिसकी ध्वनि सुनकर धायने चौंक कर कहा (हरिवंशपुराण पं० गजाधरलाल जी द्वारा अनुवादित प्र. ३१४) "राजपुत्री। यहां आ देख यह वीणा यह कह रही है कि तेरे मन को हरंण करने वाला राजहंस यहां बैठा है"।

धाय की बात सुनकर कन्या रोहिणी बसुदेव की ओर लौटी और समस्त राज लक्षणों से मंडित सुन्दरता में देव की तुलना करने वाले कुमार को निहारने लगी।

इस के मूल श्लोक जिन सेनाचार्य्य कृत हरिवंशपुराण अ० ११।

इतः पश्य वरारोहे, त्वन्मनोहरणक्षमम्।
राजहंस मिति श्रेष्ठ, वभाण पणवस्सदि॥४०॥
परा वृत्य ततः कन्या पश्यन्ती साध्यलोकत
राजलक्षणसंयुक्तं वसुदेवं वसूपमम्॥४१॥

इस का अर्थ हम ऊपर लिख चुके हैं।

इन उपर्युक्त श्लोकादि से भली भांति प्रगट होता है कि कन्या ने राजलक्षणों से मंडित और रूप में देव की तुलना

करने वाले बसुदेव को देख कर गले में वर माला डाली थी क्योंकि बसुदेव ने भी अपनी बीणा बजा कर रोहिणी को उपर्युक्त ४० वें श्लोकनुसार यह संकेत किया था "तेरे मनहरण करने वाला राजहंस यहां पर बैठा है"। फिर यह बाबूजी का लिखना कि "रोहिणी ने बड़े ही निःसङ्कोच भाव से वाजन्त्रीरूप के धारक अज्ञात कुलजाति रङ्क व्यक्ति के गले में माला डाल दी" सर्वथा शास्त्र विरुद्ध है बाबूजी ने अपनी पुस्तक में जिन-दास ब्रह्मचारी कृत हरिवंशपुराण का श्लोक देकर यह सिद्ध किया है कि स्वयंवर में चाहे कुलीन हो या अकुलीन कन्या प्रत्येक को वर सकती है।

इस पर हम अपने पाठकों को यह बता देना चाहते हैं कि जब रोहिणी बसुदेव के गले में वर माला डाल कर बसुदेव के समीप बैठगई तो कुछ अन्यान्य राजाओं ने (जो कि छिपेहुए वेष से बसुदेजी को नहीं पहिचानते थे) यह बचन कहे "कन्या ने इस वीणा बजाने वाले को वर कर घोर अन्याय किया इस से स्वयंबर में बैठे हुए राजाओं का बड़ा भारी अपमान हुआ है। इस समय राजा लोगों को चाहिये कि वे अपने अपमान की उपेक्षा न करें, इस अपराधी को पूरा पूरा दंड दें। यदि इससमय उपेक्षा की गई तो समस्त पृथ्वीतल पर ऐसा अन्याय होने लगेगा। इस समय यहां पर बड़े २ कुलीन राजा बैठे हैं इस अकुलीन को कन्या लेने का क्या अधिकार है? यदि यह

अपने को कुलीन कहलाना चाहता है तो अपने कुल को बतलावे यदि यह न बतलावे तो इसे अभी कूट डालना चाहिये और किसी राजपुत्र को यह कन्या छीन कर दे देनी चाहिये"।

जब बसुदेवजी ने इतने कठोर व मर्मछेदी बचनों को सुना तब उपर्युक्त आशयवाला श्लोक बसुदेव जी ने उन मानी मदान्ध राजाओं को ललकारते हुए कहा है कि कोई कुलीन हो या अकुलीन तुम्हें क्या अधिकार है ? कन्या को जो पसन्द होगा उसे बरेगी यदि इस बात का कोई घमंड करे कि मैं बड़ा पराक्रमी हूं तो वह रणाङ्गण में उतरकर अपनी शक्ति को प्रगट करे मैं अपने कर्णपर्य्यंत छोड़े हुए बाणों से शीघ्र ही मद रहित करूंगा"।

पाठक गण ! अब उन राजाओं और बसुदेव जी के बचनों से आप स्वयं समझ लें कि जब लड़ाई में बसुदेवजी को इतने कठोर वाक्य कहे तो बसुदेव जी कठोर बातें क्यों न कहते, बसुदेव जी को तो अपना पराक्रम दिखाना था। यदि ऐसा न होता तो पहिले ही भेष बदल कर क्यों जाते ? ईर्षालु राजाओं ने बसुदेव को अकुलीन कहा उत्तर में बसुदेव जी ने कहा तुम कौन होते हो मैं चाहे कुलीन हूं चाहे अकुलीन। बस इस पर लड़ाई होने लगी और बहुत से राजाओं को जीतकर बसुदेव जी ने अपना भेद बताया, तब सब राजे प्रसन्न हुए।

बाबू जी ने जो श्लोक का प्रमाण दिया वह बसुदेव जी ने

क्रोध में कहा है किसी आचार्य्य ने आज्ञारूप नहीं कहा जो प्रमाण हो, यह क्रोध में कहा हुआ कृत वाक्य है विधि वाक्य नहीं है। यदि कोई विधि वाक्य हो तो प्रामाण में दीजिये। ब्रह्मचारी जिनदास जी ने तो जैसा जिस किसी ने किया था कहा वैसा ही उन्हों ने लिख दिया।

इसी स्वयंवर के विषय में श्री नेमपुराण में लिखा है, अध्याय ४।

तदा सा रोहिणी कन्या सर्वाभरण भूषिता।
त्यक्त्वा सर्वान्महीपालान् जरासन्धादिकान्परान् ६१
सर्वलक्षणसंपूर्णं सर्वविद्यागुणास्पदम्।
वसुदेवं समालोक्य संतुष्टामानसेतराम् ॥ ६२ ॥

भावार्थ–तब समस्त आभरणों से सुशोभित वह रोहिणी कन्या जरासंध आदि अन्य सब राजाओं को छोड़ कर समस्त लक्षणों से भर पूर, संपूर्ण विद्या और गुणों के स्थान, ऐसे वसुदेव को देख कर मन में वहुत ही संतुष्ट हुई।

इससे स्पष्ट है कि यद्यपि उन का भेष बदला हुआ था तथापि उनके गुण, उन की विद्या, और उनके लक्षण सब व्यक्त थे और इसी लिए वे राजसभा में प्रवेश करने पाये थे।

रङ्क और अकुलीन कभी ऐसी सभाओं में नहीं जा सकता यह बात दूसरी है कि उनका कुल किसी को मालूम न हो।

उत्तर पुराण में भी इस विषय में इस प्रकार लिखा है।

हिरण्यवर्मणोरिष्टपुराधीशो महीपतेः।
पद्मावत्यामभूत्पुत्री रोहिणी रोहिणीवसा ३०७
स्वस्याः स्वयंवरायैत्य शिक्षकाग्रान् कला गुणान्।
वसुदेवमुपाध्यायतया बोधयितुं स्थितम् ॥ ३०८॥
स्वां बाहुल तया वैनं रोहिणी रत्न मालया।
आश्लिष्ट कण्ठमकरो दुत्कण्ठा कुण्ठचेतसा १०९

भावार्थः-वहां पर अरिष्ट नगर के राजा हिरण्य वर्मा रानी पद्मावति के रोहिणी नाम की पुत्री थी उस के स्वयंवर के लिए अनेक कलागुणों के धारण करने वाले मुख्य अध्यायकों के समान बहुत से राजालोग आये थे परन्तु वसुदेव "हम सब के उपाध्याय हैं" लोगों को यही समझाने के लिए सब से अलग खड़े थे। उस समय कन्या रोहिणी ने उत्कंठा से कुण्ठित चित्त होकर अपनी भुजालताओं के द्वारा रत्न माला डालकर वसुदेव के कण्ठ का स्पर्श किया।

इससे तो स्पष्ट है कि वसुदेव वहां पर सब के शिरोमणि होकर खड़े थे। वे रङ्क और अकुलीन रूप में नहीं थे।

रङ्क और अकुलीन तो केवल प्रति स्पर्धी राजाओं ने स्पर्द्धा वश बतौर अपशब्दों के कहा है जिस का कि उत्तर वसुदेव ने मारने तक के रूप में दिया है।

सारांश स्वयंबर मंडप में जितनी भी कन्याओं के विवाह हुए हैं वह सब कुलीन राजाओं के साथ ही हुए हैं। कोई भी ऐसा स्वयंवर नहीं हुआ जो किसी राजकन्या ने किसी रंक या अकुलीन को वरा हो हमतो पहिले ही लिख चुके हैं कि कोई रंक तथा अकुलीन स्वयंवर मंडप में जाने ही न पाता था। सिद्ध यह हुआ कि रोहिणी ने जो वसुदेव के गले में वरमाला डाली थी वह योग्य तथा कुलीन राजा समझ कर डाली थी।

प्रिय सज्जन वृंद! बाबू साहब ने अपने शिक्षाप्रद शास्त्रीय उदाहरण में वसुदेव के विवाह सम्बन्धी चार कथायें दी हैं। उन चारों ही में मिथ्या और शास्त्र विरुद्ध उल्लेख किया है जो कि पिछली समालोचना से और अनेक शास्त्रों के प्रमाणों से सिद्ध हो जाता है।

अब हम यह और बतला देना चाहते हैं कि बाबू साहब ने चार ही कथायें क्यों लिखी। सुनिये।

बाबू साहब ने कुरुवंश के राजा देवसेन की पुत्री देवकी को जबरदस्ती यदुवंश के राजा उग्रसेन की पुत्री बना डाला है और फिर यह सिद्ध करना चाहा है कि विवाह में जाति गोत्र का पचड़ा व्यर्थ है।

यदि कामवासना की हवस पूरी करने के लिये अन्य गोत्र की कन्या न मिले तो फिर अपनी ही बहिन भतीजी आदि से विवाह कर लेने में कोई हानि नहीं है आपने साफ लिखा है कि

बिवाह से एक स्त्री की जरूरत प्रगट होती है फिर वह स्त्री किस जाति या गोत्र आदि की हो इस विषय में आगम कुछ हस्तक्षेप नहीं करता। इसी कथा को सिद्ध करने के लिये आपने देवकी की मन गढ़ंत सर्वथा मिथ्या और शास्त्र बिरुद्ध कथा गढ़ कर लिखी है।

दूसरी जरा की कथा से आप सिद्ध करना चाहते हैं कि भंगी चमार आदि नीच मनुष्य व शूद्रों के साथ ही बिवाह कर लेने में कोई हानि नहीं है। इस बात को सिद्ध करने के लिये भी आपने कैसी चालाकी की है किस अभिप्राय और किस प्रकरण का श्लोक संबंध छोड़ कर किस तरह दिख लाया है सो पाठक ऊपर पढ़ ही चुके हैं।

तीसरी प्रियंगुसुन्दरी की भी कथा से आप दस्सों के साथ सम्बन्ध करने पर उतारू हुए हैं और इस के लिये आपने कैसी झूठी कथा गढ़ी है यहां तक कि भले कुलीन महापुरुषों को भी व्यभिचार जात बतलाने में आपको लज्जा नहीं आई है।

इसी तरह चौथी कथा से रके और अकुलीन के साथ बिवाहकरने की आवाज उठाई है और इस के लिये आपने शास्त्रों के अर्थ का अनर्थ किया है परन्तु बाबू साहब की यह चालाकी, यह माया और यह लीला अधिक दिन तक न टिक सकी।

हमने जो शास्त्रों के अनेक प्रमाण देकर चारों कथाओं का असली रूप दिखलाया है उससे पाठक महाशय सहज ही समझ

गये होंगे कि बाबूसाहबने केवल अपना मतलब सिद्ध करने के लिये शास्त्रों के अर्थ का अनर्थ किया है मिथ्या कथाएं लिखी हैं औरबसुदेव ऐसे महापुरुषों पर झूठे कलंक लगाये हैं। यह बाबू साहब के निर्मल परिणामों की बानगी है, इससे उनके परिणामों की परीक्षा अच्छी तरह हो जाती है तथापि आप के परिणामों की निर्मलता और अधिक दिखलाने के लिये हम इसी पुस्तक पर से आप के लिखे हुए कुछ वाक्य और उद्धृत किये देते हैं।

(निम्नलिखित वाक्यों से बाबू साहब के परिणामों का फोटू खिचता है)

यथा (जो रूढियों के इतने भक्त हैं) (समान जातियों में भी परस्पर रोटी बेटी व्यवहार एक करने को अनुचित समझते हैं)

(अपनी एक जाति में भी आठ आठ गोत्रों तक को टालने के चक्कर में पड़े हैं)।

विवाह कर्मगृहस्थियों के लिये एक लौकिक धर्म्म है और इस लिए वह लोकाश्रित है। (एक समय था जब इसी भारत भूमि पर सगे भाई बहिन भी परस्पर स्त्री पुरुष होकर रहा करते थे और इतने पुण्याधिकारी समझे जाते थे कि वह मरने पर उनके लिए नियम से देवगति का विधान किया है।

(फिर वह समय भी आया जब उक्त प्रवृति का निषेध किया गया और अनुचित ठहराया) परन्तु उस समय गोत्र तो गोत्र एक कुटुम्ब में विवाह होना अपने से भिन्न वर्णों के साथ शादी का किया जाना और शूद्र ही नहीं किन्तु म्लेच्छों तक की कन्याओं से विवाह करना भी अनुचित नहीं माना गया)।

यह ढूंढ खोज लगाना कि आगम में किसप्रकार से विवाह करना लिखा है बिल्कुल व्यर्थ है) कुछ त्रिवर्णाचार जैसे अनार्ष ग्रन्थों में विवाह विधानों का वर्णन ज़रूर पाया जाता है परन्तु वे आगम ग्रन्थ नहीं हैं इतने पर भी कुछ ग्रन्थ तो उनमें से बिल्कुल ही जाली और बनावटी हैं जैसा कि जिन सैन त्रिवर्णाचार और भद्रबाहु संहिता

विवाह विषय में आगम का मूलविधान सिर्फ इतना ही पाया जाता है कि वह गृहस्थधर्म का वर्णन करते हुए गृहस्थ के लिए आम तौर पर गृहिणी की अर्थात् एक स्त्री की ज़रूरत प्रकट करता है वह स्त्री कैसी किस वर्ण की किस जाति की किस गोत्र की होनी चाहिये और किस प्रकार के विधानों के साथ विवाह कर लानी चाहिये इन सब बातों में आगम कुछ भी हस्ताक्षेप नहीं करता आगम से इनका प्रायः कोई सम्बन्ध विशेष नहीं है।

सज्जनो ! बाबू साहब के उपर्युक्त वाक्यों से आप स्वयं बिचार कर सकते हैं कि उनका हृदय कैसा है और वह समाज में कैसी प्रवृति चलाना (गोत्र जाति पांति नीच ऊंच भंगी चमार चांडालादि भेद मेटकर हर एक के साथ विवाह की प्रवृत्ति करना) चाहते हैं उपर्युक्त प्रवृति को चलाने के लिये ही बाबू साहब ने बसुदेवजी के विवाह की चार घटनाओं का (जोकि बिल्कुल झूठ हैं) उल्लेख कर के पुस्तक को समाप्त कर दिया था लेकिन फिर बाबू साहब को खयाल आया कि भतीजी के साथ भी शादी उचित बतादी तथा नीच भील और व्यभिचार जात दस्सों के साथ भी जायज बतादी किन्तु वेश्या तो रह ही गई यह सोचकर आपने फिर शिक्षाप्रद शास्त्रीय उदाहरण का दूसरा हिस्सा लिखा और खूबही वेश्या गमन की शिक्षा दी है आपने सेठ चारुदत्तकी कथा लिखकर (जिसमें अपना मतलब बनाने के लिये बहुत से झूठ शब्द अपनी तरफ से लगाये हैं) यह प्रयोजन निकाला है कि सेठ चारुदत्त ने एक नीच वेश्या को स्त्री बनाकर खुल्लम खुल्ला अपने घर में डाल लेने के अपराध में उससमय की जाति बिरादरीने उन्हें खारिज नहीं किया और न कोई दूसरा ही उनके साथ घृणा का व्यवहार किया गया।

बाबू जी यह ठीक है कि बसन्तसैना एक वेश्या की पुत्री थी परन्तु उसने उस जन्म में सिवाय चारुदत्त के अन्य किसी

को अनुराग की दृष्टि से नहीं देखा यह बात हरिवंश पुराण के नीचे लिखे श्लोकों से साबित होती है।

इह जन्मनि मेमातश्चारुदत्तात्परस्य न।
संकल्पस्तेन तेनारमायोजयितुमर्हसि ५१

श्रीयुत् पं० गजाधरलाल जी ने इसका अर्थ इस प्रकार लिखा है। मां! इस जन्म में सिवाय चारुदत्त के मेरी दूसरे के साथ संभोग न करने की प्रतिज्ञा है। इसलिये तू बहुत जल्दी से मेरा और उस का मिलाप कराने का प्रयत्न कर।

आगे धन निबट जाने पर जब बसन्तसैना की माता ने बसन्तसैना से चारुदत्त को छोड़ देने को कहा है तब बसन्तसैनाने कहा है।

कौमारं पतिमुच्छुत्वा चारुदत्तंचिरोषितं।
कुबेरेणापि मे कार्यं नेश्वरेण परेण किम् ॥६८॥

श्रीयुत् पं० गजाधरलाल जी ने इस की टीका इसप्रकार लिखी है—अरे यह चारुदत्त कुमार अवस्था से ही मेरा पति है——मैं इसे कदापि नहीं छोड़ सकती। यदि इस से अन्य पुरुष कुबेर के समान भी ईश्वर हो तो भी वह मेरे काम का नहीं। इन दोनों श्लोकों से यह अच्छी तरह सिद्ध होजाता है कि बसन्तसैन ने अपने जीवन भर में चारुदत्त के सिवाय अन्य

किसी को अनुराग की दृष्टि से नहीं देखा। इससे भी बढ़ कर बात यह है कि चारुदत्त ने बसन्तसैना को सद्धर्म का उपदेश दिया था इसी बात को बसन्तसैना ने स्वयं कहा है। यथा-

"सद्धर्मदर्शिनो मेस्य स्यात्यागस्त्यागिनः कुतः।"

अर्थात् सद्धर्म को दिखाने वाले और महा उदार ऐसे चारुदत्त का त्याग मैं कैसे कर सकती हूं।

चारुदत्त के समीप ग्रहण किये हुए सद्धर्म के प्रभाव से ही चारुदत्त के चले जाने पर बसन्तसैना ने अर्जिका के पास व्रत ग्रहण किये हैं। यथा—

तांसुश्रूषा करी स्वश्रूः आर्याँते व्रत संगतां।
श्रुत्वावसंत सेनां च प्रतिः स्वीकृत वानहम् ७६

अर्थ-वेश्या बसन्तसैना अपनी मां का घर परित्यागकर मेरे घर आगई थी। और उसने अर्जिका के पास जा श्रावक के व्रत धारण कर मेरी मां और स्त्री की पूर्ण सेवा की थी इसलिये मैं उससे भी मिला उसे सहर्ष अपनाया। इससे पहिली बात तो यह साबित होती है कि चारुदत्तने उपकारी और व्रत धारण करने वाली समझकर ही बसन्तसैना को अपनाया था दूसरी बात यह कि चारुदत्त ने बसन्तसैना को घर में नहीं डाललिया था और न उसे स्त्री रूप से स्वीकृत किया था, जैसा कि बाबू साहब ने लिखा है। यह दोनों बातें शास्त्रों में नहीं हैं न जाने बाबू साहबने कहां से लिख दी है बाबू साहब की यह

पुरानी आदत है कि जिस बात से अपना मतलब निकलता देखते हैं उसी बात को अपनी ओर से मिला कर भ्रष्ट लोगों को धोखे में डाल देते हैं। असल बात यह है कि बसन्तसैना सेवा सुश्रुषा करने के लिये आई थी, और चारुदत्त ने उसे इसी रूप में अपना लियाथा। इन सब बातों से यह सिद्ध होता है कि बसन्तसैना अन्य वेश्याओं के समान साधारण वेश्या नहीं थी। वह वेश्या की लड़की अवश्य थी परन्तु थी वह एक पतिव्रता। दूसरी बात यह है, ऐसी एक पतिव्रता बसन्तसैना के साथ भी समागम करने से चारुदत्त का नाम आज तक बदनाम हो रहा है, सप्त व्यसनों के सेवन करने वालों में, वेश्या व्यसन में चारुदत्त को नाम अवश्य आता है। जब आज तक उसका नाम बदनाम है तो यह असंभव बात है कि उसका नाम उस समय बदनाम न हो। उस का नाम उस समय खूब बदनाम था। तभी तो आचार्यों ने चारुदत्त का ही नाम वेश्या व्यसन के सेवन में उदाहरण रूप से रक्खा, अन्यथा क्या उस समय वेश्या सेवन करने वाले अन्य मनुष्य नहीं थे? परन्तु सब को छोड़कर जो चारुदत्त का नाम रक्खा गया है वह इसलिये रक्खा गया है कि इस अवसर्पिणी काल में इस वेश्या व्यसन के द्वारा जैसा चारुदत्त का नाम बदनाम हुआ वैसा नाम बदनाम वेश्या सेवन करने वालों में अन्य किसी का नहीं हुआ था। पिता की आज्ञा अनेकों ने पाली परन्तु इस विषय में

जैसा रामचन्द्र जी का नाम प्रसिद्ध हुआ है वैसा अन्य किसी का नहीं। इस का कारण ही यह है कि उस समय पिता की आज्ञा पालन करने में रामचन्द्र का नाम बहुत ही प्रसिद्ध हो गया था, इस लिये आचार्यों ने उसे उदाहरण रूप में ले लिया। यह निश्चित है कि उदाहरण में प्रसिद्ध व्यक्ति ही लिए जाते हैं, अप्रसिद्ध नहीं। इन सब बातों से निश्चित होता है कि उस समय वेश्या सेवन करने में चारुदत्त खूब ही बदनाम होरहे थे। और इसी लिये आचार्य्यों ने उनका नाम वेश्या व्यसन के उदाहरण में रक्खा है। तथा, नाम बदनाम होना ही उन्हें घृणा की दृष्टि से देखना है। आज हज़ारों वर्षों के बीत जाने पर भी जब चारुदत्त का जीवनचरित्र पढ़ा जाता है, और उस का वेश्यासक्तपना दिखलाया जाता है तब समस्त पाठक और श्रोता चारुदत्त को धिक्कार देने लगते हैं। क्या यह घृणा की दृष्टि नहीं है। जब आज तक उसे इस काम के करने के लिये धिक्कार दिया जाता है, तब क्या उस समय उन्हें धिक्कार नहीं दिया जाता होगा। जिस समय चारुदत्तका धन निबट गया था चारुदत्त को बुढ़िया वेश्या ने घर से निकाल दिया था और चारुदत्त की स्त्री तथा माता अत्यन्त दुख पा रही थी, क्या उस समय लोग चारुदत्त को धिक्कार दिये बिना रह गये होंगे परन्तु बाबू साहब को तो लोगों को भ्रम में डालकर और सब को वेश्या गमनका खुल्लम खुल्ला उपदेश देकर अपनी हवस

पूरी करना है उन्हें इतनी लम्बी समझ से क्या काम, इस लिये तो आपने झट लिख मारा कि उसके साथ कोई घृणा का व्यवहार नहीं किया गया। क्या बाबू साहब का यह लिखना सफेद झूठ नहीं है ?

(सारांश) बाबू साहब ने जो चारुदत्त की कथा से वेश्या तक को घर में डाल लेने की प्रवृत्ति चलाना चाहा है यह प्रवृत्ति सर्वथा धर्म्म और लोक विरुद्ध है।

ऐसी प्रवृत्ति से पवित्र जैन धर्म्म को कलङ्क लग आयगा और जो आप जैनियों की संख्या में वृद्धि करना चाहते हैं ऐसी कुप्रथा से सर्वथा ह्रास होजायगा। पाठकों को हम यह भी बता देना चाहते हैं कि बाबू साहबने एक विवाह समुद्देश्य नाम की भी पुस्तक लिखी है उसमें भी यही भाव दिखाया है कि हर कोई हरएक की कन्या के साथ बिवाह कर सकता है।

इतना लिखकर इस पुस्तक को समाप्त करते हैं और पाठकों से क्षमा मांगते हैं कि हम से जो कुछ त्रुटियां रह गई हों वह क्षमा करें।

प्रार्थी :—

मक्खनलाल,
प्रचारक जैन अनाथाश्रम, देहली।